Indian Streams Reserach Journal
Vol.1,Issue.XII/Jan; 12pp.1-4
Prof.KUL BHOOSHAN TRIPATHI
ISSN:-2230-7850

Research Papers

विस्थापनधर्मी विकास–एक अध्ययन

कुल भूषण त्रिपाठी,
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,
नई दिल्ली–110025.

प्रस्तावना :–

नई आर्थिक नीतियों के प्रभाव के कारण विकास की नीतियाँ भी परिवर्तित हुईं। भूमण्डलीकरण ने पूरे विश्व को एक गाँव में बदलने की जो प्रक्रिया शुरू की, उसके परिणामस्वरूप विकास का रूप बदला और विकास के केन्द्र में आम जन के कल्याण की जगह आर्थिक लाभ ने ले ली। आज के समय में विकास का जो रूप सर्वाधिक दृष्टिगोचर हो रहा है वह विस्थापन धर्मी है। विस्थापन सिर्फ आदिवासियों का ही नहीं बल्कि गाँव से शहर की ओर भी तीव्र गति से हो रहा है। इस विस्थापनधर्मी विकास की गति बहुत तेज है और इसके प्रभाव जीवन के सभी मानवीय पक्षों पर पड़ रहे हैं।

भारत में नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद लगभग सभी क्षेत्रों में नीतिगत परिवर्तन हुए हैं। उदारीकरण की नीति के कारण भारत सरकार की विकास नीति भी बदल गयी है। औद्योगिकीकरण आज विकास की सबसे मुख्य नीति बन गयी है। भूमण्डलीकरण के दौर में ''यह लगभग अटल सत्य की तरह मान लिया गया है कि विकास की एक ही संभव दिशा है–वह दिशा जो पश्चिमी औद्योगिकीकरण की रही है।''1 औद्योगिक प्रगति हासिल करने के लिए हमें कई प्राथमिकताओं, सिद्धांतों और लक्ष्यों की बलि चढ़ानी पड़ी है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पूरी छूट दी गयी है और आज अनेक वस्तुओं के बाजार में उनका एकाधिकार कायम हो गया है। एकाधिकार और मुनाफाखोरी पर नियंत्रण के पुराने नियम–कानूनों को लगभग खत्म कर दिया गया है। विलय और अधिग्रहण पर रोक हटा दी गयी है। कहा जा सकता है कि चाहे जैसे भी हो, औद्योगिक उत्पादन तो बढ़ रहा है, जिससे देश के लोगों को ज्यादा चीजें सुलभ हो रही हैं।

औद्योगिक प्रगति का विश्लेषण करने पर चौंकाने वाले तथ्य सामने आ रहे हैं। समाज पर औद्योगिकीकरण के प्रभाव ज्यादातर नकारात्मक ही हैं। ''औद्योगीकरण की नयी लहर देश में विस्थापन की भी एक नयी लहर पैदा कर रही है। जल–जंगल–जमीन के नये संकट पैदा हो रहे हैं। इस औद्योगीकरण के लिए इतने बड़े पैमाने पर जमीन, जल, खनिज आदि की जरूरत होगी, यह अहसास पहले नहीं था। कलिंगनगर, काशीपुर, सिंगूर, नंदीग्राम, नवी मुंबई, दादरी, प्लाचीमाड़ा आदि के संघर्ष इसी औद्योगीकरण की देन हैं।''2

भूमण्डलीकरण ने बाजार की नीतियों के माध्यम से विकास के मायने भी बदल दिये हैं। उदारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप ही सामूहिक और सामाजिक विकास के स्थान पर व्यक्तिगत विकास को दिनों–दिन वरीयता मिलती जा रही है। व्यक्तिगत विकास की अंधी दौड़ में जायज और नाजायज का प्रश्न निरर्थक हो गया है। ''बेरोजगारी फैलाकर, निजी लघु संपदा को लूटकर बड़ी निजी विशाल संपदा बनाने को विकास का जायज तरीका माना जा रहा है।''3 विकास की अवधारणा सभी के हित को केन्द्र में रखकर बनायी जानी चाहिए परन्तु बाजार के दबाव में ऐसा संभव नहीं है। भूमण्डलीकरण के समर्थक विद्वान निजी हितों को साधने वाली नीतियों की जोरदार वकालत करते हैं। ''उदारीकरण के समर्थकों की दलील थी कि भारत को विकास के लिए आवश्यक हालात तो बनाने ही पड़ेंगे क्योंकि बिना इसके गरीबी कम नहीं की जा सकती।''4

उदारीकृत अर्थव्यवस्था की नीतियों के दबाव में विकास का जो ढाँचा अपनाया गया, वह अभी तक अपने सुखद परिणाम दे पाने में असफल रहा है। समाज में विषमता की दरार लगातार बढ़ती जा रही है। ''भूमण्डलीकरण की छत्रछाया में अथवा इसकी बैसाखी पकड़कर जनोन्मुख, समग्र विकास की आशा करना मिट्टी से तेल निकालने सरीखा निरर्थक और घातक अभियान है।''5 भूमण्डलीकरण की नीतियों ने विकास के नाम पर समाज के चंद

लोगों का जीवन–स्तर सुधारा है और उसे बहुत ऊपर पहुँचा दिया है। जिस तरह की सुख–सुविधाओं का दुनिया के उद्योगपति, व्यवसायी, वित्तीय क्षेत्र में नियंत्रक, अलग–अलग आधुनिक प्रोफेशनों में लगे डॉक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, वित्तीय सलाहकार, राजनीतिकर्मी, मनोरंजन जगत के सितारे, गायक, खिलाड़ी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शीर्षस्थ लोग, आज जो आनन्द उठा रहे हैं, बीते जमाने में वह राजा–महाराजाओं को भी दुर्लभ था।

भूमण्डलीकरण के दौर में विकास की प्रक्रिया ने मूल्यों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज के समय में परोपकार जैसे सामाजिक मूल्य अपना अर्थ खोते जा रहे हैं। ''वैश्वीकरण के चलते समाज में हर वस्तु बिकाऊ हो गयी है, यहाँ तक कि वे पदार्थ भी जो कभी पवित्र माने जाते थे, जैसे स्वास्थ्य और शिक्षा, सांस्कृतिक विरासत, पानी, हवा आदि।''6 नई आर्थिक नीतियों ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की होड़ पैदा कर दी है। उदारीकृत वैश्विक अर्थव्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दुनिया के किसी भी हिस्से में उद्योग स्थापित करने की छूट देती है। ''प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से पर्यावरणीय और परिस्थितिकीय संकट पैदा होने के साथ ही बहुत जल्द संसाधनों के समाप्त हो जाने का संकट भी आ खड़ा हुआ है।''7

आज विकास के नाम पर बड़े बाँधों के निर्माण, खनन एवं औद्योगिक प्रतिष्ठान बनाने के क्रम में बड़ी संख्या में लोगों का विस्थापन हो रहा है। वन और पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकतर आदिवासियों का निवास होता है, इसलिए विस्थापन का शिकार भी अधिकतर आदिवासी ही होते हैं। समाज की मुख्य धारा से बाहर होने के कारण आदिवासियों की समस्याओं पर बहुत गंभीरता से विचार नहीं हो पाता है। विकास के नाम पर आदिवासी जनजातियों को जबरदस्ती एक स्थान से दूसरे स्थान पर पटक दिया जाता है। भारत में आदिवासी जनजातियों के कई समूह हैं, जिनकी विस्थापन से सम्बन्धित समस्याएँ अक्सर प्रकाश में आती रहती हैं।

भूमण्डलीकृत विकास के अन्तर्गत सिर्फ आदिवासी विस्थापन ही नहीं हुआ है बल्कि गाँवों से शहरों की ओर भी विस्थापन की प्रक्रिया में अत्याधिक वृद्धि हुई है। लघु–उद्योगों के समाप्त होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर समाप्त हो गये हैं। कृषि–क्षेत्र पर भी कई तरह के संकट गहराते जा रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीजों और खादों ने गरीब किसान की कमर तोड़ कर रख दी है। किसान कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं। अतः ग्रामीण जनता का शहरों की ओर विस्थापन अपरिहार्य हो गया है। नयी आर्थिक नीतियों के द्वारा यह विस्थापन की प्रक्रिया घटने के बजाय लगातार बढ़ती जा रही है। ''आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया नगरोन्मुख है, इसलिए भारत में आर्थिक सुधारों के चलते यह गाँवों और शहर के जीवन स्तर के बीच अन्तर को और बढ़ाएगा ही।... बाजार मुनाफे के लिए संसाधनों का आवंटन क्रय–शक्ति के हिसाब से करता है, न कि जरूरत के अनुसार इसलिए शहरी क्षेत्र में आय का संकेन्द्रण बढ़ता जाएगा और ग्रामीण क्षेत्रों में आय लगातार घटती जाएगी।....ग्रामीण–शहरी जीवन–स्तर में अन्तर यदि और बढ़ता गया तो इससे राजनीति और समाज में समस्याएँ और गहरी होंगी।''8

अतीत में भी विकास की प्रक्रिया में विस्थापन के साक्ष्य मौजूद रहे हैं परन्तु 1991 में नयी आर्थिक नीतियों की घोषणा के पश्चात भारत में विस्थापन की जो प्रक्रिया शुरू हुई, वह दिनों दिन बढ़ती जा रही है। नर्मदा के पास के गाँव हो या टिहरी, सभी जगह विकास के नाम पर विस्थापन को जायज ठहराया जा रहा है। भूमण्डलीकरण के आज के दौर में, इस देश में विस्थापनधर्मी विकास का वर्चस्व दिखाई पड़ रहा है।संदर्भ

1. सिन्हा, सच्चिदानन्द, भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, पहला संस्करण 2003, पृ. 91.
2. दुबे, रविकांत, वैश्विक आर्थिक मंदी, राजभाषा पुस्तक प्रतिष्ठान दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 63.
3. काबरा, कमलनयन, बदलता भारत : दावे और हकीकत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 101.
4. खिलनानी, सुनील, भारतनामा, अनुवाद–अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2001, पृ. 114.
5. काबरा, कमलनयन, भूमण्डलीकरण : विचार, नीतियाँ और विकल्प, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 99.
6. बरमानी, आर.सी., वैश्वीकृत संसार में नागरिकता, गीतांजति पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 128.
7. सिंह, प्रेम, उदारीकरण की तानाशाही, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 91.
8. भादुड़ी, अमित, एवं नय्यर, दीपक, उदारीकरण का सच, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 1996, पृ. 93.